International Journal of Research in Social Sciences And Humanities http://www.ijrssh.com

(IJRSSH) 2012, Vol. No. 2, Issue No. II, Apr-Jun **ISSN: 2249-4642**

'राधाचरितम्' महाकाव्य की भाषा शैली

उदयनारायण सिंह, शोधार्थी
सी0एम0जे0 विश्वविद्यालय, शिलाँग (भारत)

डॉ0 एन0 शंकरनारायणा शास्त्री
प्रोफेसर, सी0एम0जे0 विश्वविद्यालय, शिलाँग (भारत)

सार

भाषा के बिना भाव गूँगे होते हैं। भाषा मानवीय अभिव्यक्ति का सहज सुन्दर और सर्वोत्तम माध्यम है। मनुष्य अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा मौखिक अथवा लिखित रूप में करता है। आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति मानव में स्वाभाविक है। इसी आत्माभिव्यक्ति से प्रेरणा पाकर मानव की अस्फुट वाणी समय के क्रम से भाषा के रूप में विकसित हुई और साहित्य का सृजन हुआ। विचारों की मधुर अभिव्यक्ति ही साहित्य है। अतः भाषा साहित्य का बाह्य शरीर है। काव्यशास्त्रियों ने जिस वाङ्मय पुरुष की कल्पना की है उसका शरीर भाषा को ही माना है। इससे भाषा की महत्ता व्यक्त होती है, किन्तु साहित्य के लिए जिस भाषा की अपेक्षा होती है उसका साधारण भाषा से भिन्न होना अनिवार्य है। कवि अपने हृदय में उत्थित भावों का सहृदय संवेद्य बनाने के लिए भाषा का ही आलम्बन लेता है। अतः उसकी भाषा सशक्त होना अत्यावश्यक है। प्रत्येक रचना को काव्यत्व के गुण से अन्वित और विभूषित करने वाली भाषा ही है। कवि का चिन्तन, अनुभूति एवं विचार भाषा के परिधान में ही पुरस्कृत होते हैं।

मुख्य षब्दः– अभिव्यक्ति, आत्माभिव्यक्ति, सहृदय संवेद्य, विभूशित, अनुभूति।

भाशा वैलक्षण्य

भाषा तभी सुन्दर कही जा सकती है जब उसमें पदलालित्य, सरसता, अभिव्यंजना, स्पष्टता, शुद्धता आदि साहित्योपयोगी गुण विद्यमान होंगे। सुन्दर भाषा की योजना एक बहुत बड़ी कला है। वस्तुतः साहित्य का अधिकांश सौन्दर्य भाषा की सुषमा पर ही अवलम्बित होता है। यद्यपि रस का भाव काव्य की आत्मा है तथापि कलापक्ष अथवा अभिव्यक्ति किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है।

संस्कृत–आचार्यों ने साहित्य की भाषा देते हुए इस बात पर बल दिया है कि उसमें शब्दगत एवं अर्थगत एक विशिष्ट प्रकार का समन्वय रहे। आचार्य भामह ने शब्द और अर्थ दोनों के सहभाव को काव्य माना है।[1] आचार्य रूद्रट ने भी भामह का समर्थन किया है।[2] वामन ने तो काव्य को अलंकार प्रधान बताकर[3] उसके भाषा सौन्दर्य को ही महत्व प्रदान किया है। इस प्रकार संस्कृत आचार्यों ने काव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए काव्य में शब्द व अर्थ दोनों को ही महत्व दिया है। शब्द एवं अर्थ दोनों ही भाषा के अंग हैं। अतः भाषा काव्य की सत्ता का अनिवार्य अंग है।

साहित्य–सर्जना के मूल में आत्माभिव्यक्ति के साथ ही कवि की सौन्दर्योपासना की प्रवृत्ति भी होती है। मानव स्वभावतः सौन्दर्योपासक प्राणी है और सभ्यता एवं संस्कृति के साथ–साथ उसकी सौन्दर्य–प्रियता में भी परिष्कार होता है। कवि की यह सौन्दर्य–भावना उसकी प्रेरणा में ही नहीं अपितु अभिव्यक्ति में भी विद्यमान होती है। प्रकृति के मनमोहक रूप से मुग्ध होकर वह उसकी रमणीयतम अभिव्यक्ति की आकांक्षा करता है। भाव–पक्ष साहित्य की प्रेरणा पर आधारित है तो कला–पक्ष का आधार उसकी मनोरम अभिव्यक्ति है। भाव–पक्ष में स्वाभाविक मनोरमता होती है जबकि कला–पक्ष में रमणीयता लाने का प्रयास

किया जाता है। कला–पक्ष तभी रमणीय हो सकता है जबकि भाषा सुन्दर एवं साहित्यिक गुणों से युक्त हो।

डॉ० हरिनारायण दीक्षित की भाषा शैली अत्यन्त सहज, सरल और सरस है। दृश्यों की सजीवता, भावों की सुकोमलता, नैसर्गिक सरसता, सहजता, स्वाभाविक रूप से ही इनकी भाषा शैली में दिखायी पड़ती है।

*राधाचरितम् की भाषा प्रधानतया **असमासा** तथा **मध्यम समासा** है। अतः इसमें क्लिष्टता का सर्वथा अभाव है। यद्यपि सम्पूर्ण काव्य में आदि से अन्त तक **अभिधा शक्ति** का प्रयोग मिलता है, किन्तु काव्य सौन्दर्य में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई है। व्यंजना प्रधान न होते हुए भी **भाषा रोचक** एवं **हृदयावर्जक** है तथा सहृदयों को आद्यान्त बाँधे रखने में समर्थ है। महाकाव्य में **प्रसाद** एवं **माधुर्य गुण** की प्रचुरता है जिससे काव्य हृदय में उसी प्रकार व्याप्त हो जाता है जैसे स्वच्छ वस्त्र में जल एवं ईंधन में अग्नि*[4]

उदाहरणार्थ–

वैदर्भी ललिता शैली, शोभतेऽस्याः सदा मुखे।

वाक्यश्रवणमात्रेण, श्रोता श्रव्यं बिबुध्यते।। 3/25

*राधा की वाणी के विषय में कही गई यह बात कवि के अपने काव्य पर भी पूर्णरूपेण घटित होती है। कवि स्वयं **वैदर्भी शैली** के मार्गानुयायी है। अतः उनके काव्य के पठन अथवा श्रवण मात्र से ही अर्थ प्रतीति हो जाती है।*

कवि की भाषा शैली सामासिकता एवं क्लिष्टता से रहित है। इनकी शैली में कालिदास जैसी कोमलकान्तता विद्यमान है। स्थान–स्थान पर सूक्तियों के प्रयोग उनकी भाषा समृद्धि के सूचक हैं। उदाहरणार्थ–

वार्धक्यकाले हरिभक्तिभावो, जागर्ति चेत्तन्न स याति लोपम्।

धीमान् क्रियावान् मनुजश्च नीरूक्, प्रातः प्रबुध्यात्र पुनर्न शेते।। (19/178)

*महाकवि ने **शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों** दोनों का ही प्रयोग किया है। किन्तु यह प्रयोग सहज एवं गत्यनुरूप ही है जो भावप्रवाह में बाधक नहीं बनता है। अनुप्रास का बाहुल्य है जिससे निरन्तर लयबद्धता बनी रहती है। कवि की कविता–कामिनी का अलंकार है **'अनुप्रास'** जो उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करता है। इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, निदर्शता, दृष्टान्त आदि अलंकारों का भी यथास्थान स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। मात्र पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए अलंकारों का व्यवहार कवि ने नहीं किया है। अर्थान्तरन्यास अलंकार तो कवि की लेखनी पर अग्रतिष्ठित है जो स्वतः ही प्रस्फुट हो जाता है। इस अलंकार के प्रयोग में कवि कालिदास के अनुयायी से प्रतीत होते हैं।*

ये अर्थान्तरन्यास कवि के लोकानुभव के परिचायक होते हैं, जो कवि जितना अधिक निकट से लोक व्यापारों को देखता है और अनुभव करता है उसकी वाणी से उतनी ही अधिक सूक्तियाँ उत्पन्न होती हैं और लोक में प्रसिद्ध हो जाती है। लोक में प्रसिद्ध होने के कारण ये अर्थान्तरन्यास लोकोक्तियाँ बन जाती हैं। महाकाव्य में प्राप्त सूक्तियों को परिशिष्ट में प्रस्तुत किया गया है। लोकोक्तियों का एक सहज प्रयोग द्रष्टव्य है–

"पाणौ पाणिं निधाय।"

*व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों ने उनकी भाषा को और भी रमणीय बना दिया है। अतः संक्षेपतः कवि भाषा मनोरमा, भावसंवलिता एवं हृदयस्पर्शी है जो सहजता के गुण में व्याप्त होती हुई सीधे हृदय में प्रवेश कर जाती है। नामधातु प्रयोग जैसे **पद्मतिः मीनति**[5], **सुलभायते**[6] **पोतायते**[7] आदि इसमें अद्भुत सहयोग करते हैं।*

राधाचरितम् की पदावली की मधुरता तथा जीवन्तता का आधार अनुप्रास है। अनुप्रास के सिद्धहस्त कवि ने जिस मोहक भाषा की सृष्टि की है वह प्रांजलता से ओत–प्रोत है। प्रयत्नपूर्वक परिमार्जित होने पर भी काव्य की पदावली से भाषा की सहजता तथा मधुरता न तो कहीं आहत हुई है और न ही उसके ललित प्रवाह में उससे बाधा उपस्थित हुई है। यह उन सब भावों को व्यक्त करने में समर्थ है, जिनकी काव्य में इससे अपेक्षा की गई है। काव्य की विभिन्न स्थितियों से प्रवाह की समरसता में विघ्न नहीं आया है। काव्य की भाषा के सहज स्वाभाविक प्रवाह का यही आधार है। भाषा की प्रांजलता तथाा माधुर्यपूर्ण प्रवाह ने मिलकर काव्य में पदलालित्य को जन्म दिया है। राधाचरितम् में कालिदास, दण्डी, श्रीहर्ष आदि प्राचीन कवियों की कविता के समान हृदयग्राही पदलालित्य के उदाहरण मिलते हैं। यहाँ कतिपय रोचक उदाहरण दिये गये हैं, जिनसे पदलालित्य के प्रयोग में कवि की निपुणता का यथेष्ट परिचय मिलता है।

(1) वंशीवटोऽयं यमुनातटोऽयं, लीलाश्च तास्ताः सितशर्वरीषु।

जाते वियोग भवतो व्रजेऽस्मिन्, दिवानिशं मां परिपीडयन्ति।। 1/50

(2) हासा विलासा ब्रजमण्डलस्य, त्वयैव सार्धं मथुरां प्रयाताः।

दुःखं च दैन्यं च धना प्रतीक्षा, पदं व्यधुः कृष्ण। किमत्र कुर्याम्।। 1/47

(3) कालिन्दकन्या कमनीयकूले, वृन्दावने कृष्ण वियोगलीना।

राधाभिधाना वृषभानुकन्या, विचिन्तयन्त्यास्त कदम्बमूले।। 1/1

इस प्रकार इनके शब्दों में कई स्थलों पर श्रुतिमधुर शब्दों की संगीतात्मकता एवं एकरसता है, जो वीणा के तारों की झंकार से समान अर्थ ग्रहण करने से पहले ही हृदय

को रस मग्न कर देती है। राधाचरितम् के छन्दों एवं बन्धों में सर्वत्र अनुक्रम एवं सन्तुलन है जिसके कारण कहीं–कहीं पर छन्द श्रुतियों की लड़ियों सी बनकर पाठक या श्रोता के मन में एक झंकार पैदा करते हैं। बन्धों का यह कलात्मक गुम्फन ही शब्दालंङ्कारो की आत्मा है। इससे डॉ० दीक्षित की भाषा को गति प्राप्त हुई है। परम्परागत सूक्तियाँ के साथ–साथ हिन्दी भाषा से अनुचित लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ भी इसमें पग–पग पर दृष्टिगोचर होती हैं। सुन्दर सूक्तियों की एक लम्बी शृंखला जो व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखती है। इसलिए सुन्दर सूक्तियाँ अनुकरणीय हैं।

शैली सौष्ठव

"जलसम पे जीम उमद ''रीति ही व्यक्ति है।''

शैली या "जलसम शब्द लैटिन के स्ताइलस शब्द से निकला है। शैली शब्द की उत्पत्ति शील् शब्द से हुई है जो कि लेखक के स्वभाव की ओर संकेत करता है।[8] कुल्ल्क–भट्ट ने अपनी टीका में शैली का प्रयोग विशिष्ट व्याख्यान पद्धति के अर्थ में किया है।[9]

काव्य का मुख्य अंग शैली है। खाद्य सामग्री चाहे जितनी मूल्यवान क्यों न हो किन्तु जब तक उसको सजाकर व सम्भालकर न रखा जाये वह ग्राह्य नहीं होगी। काव्य में शैली का वही स्थान है जो मनुष्य में उसकी आकृति और वेशभूषा का है। यद्यपि यह सर्वथा ठीक नहीं है कि जहाँ सुन्दर आकृति हो, वहाँ सुन्दर गुण भी हो तथापि आकृति और वेशभूषा गुणों के मूल्यांकन में बहुत सहायक होते हैं। चित्त का प्रसादन जितना कथानक की मौलिकता और रोचकता से होता है, उतना ही शैली से भी। काव्य की प्रेषणीया अर्थात् दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर करती है। शैली का सम्बन्ध केवल शब्दों से नहीं है वरन् विचारों और भावों से भी है। शैली के कुछ गुण जैसे संगति, तार्किक

क्रम आदि तो विचार से सम्बन्ध रखते हैं व कुछ भाषा से। कवि का उद्देश्य किसी बात को केवल बोधगम्य करना ही नहीं है वरन् प्रभाव डालना भी है। माघ ने कवि की उपमा तन्तुवाय से दी है। डोरे वे ही रहते हैं परन्तु चतुर तन्तुवाय उनके विविध विन्यास से नितान्त महनोहर साड़ी बनाने में समर्थ होता है।

संस्कृत साहित्य शास्त्रों में रीति शब्द प्रयुक्त हुआ जो शैली से अधिक व्यापक है। रीति शब्द की व्युत्पत्ति ''रीड़'' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से हुई है इसका अर्थ है मार्ग, या गति। इसकी पुष्टि महाराज भोज के कथन से भी होती है।

वैदर्भीदिकृताः पन्था काव्ये मार्ग इति स्मृतः।

रीङ् ताविति धातोःसा व्युत्पत्या रीति रूच्यते।।[10]

पाँचवी–छठी शताब्दी में भामह एवं दण्डी ने केवल दो ही रीतियाँ मानी हैं–वैदर्भी एवं गौड़ी। दण्डी प्रधान रूप से अलंकारवादी थे किन्तु उन्होंने रीति पर भी विचार किया है। प्रत्येक कवि की शैली में सूक्ष्म भेद की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है–

''ईख गुड़ आदि के मुधर होने पर भी उनकी मधुरता में महान् अन्तर है एवं इस अन्तर का स्वयं सरस्वती भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।''[11]

इस प्रकार एक ही रीति का प्रयोग करने वाले विभिन्न कवियों की शैली में सूक्ष्म भेद दृष्टिगत होता है। फिर भी दण्डी ने काव्य गुणों के आधार पर वैदर्भी एवं गौड़ी दोनों शैलियों का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने भरतमुनि द्वारा वर्णित दस गुणों को वैदर्भी रीति के प्राण कहा है और गौड़ी को निकृष्ट शैली माना है।[12]

(IJRSSH) 2012, Vol. No. 2, Issue No. II, Apr-Jun ISSN: 2249-4642

भामह ने वैदर्भी और गौड़ी के विभाजन को अल्पवृद्धि वाले लोगों का गतानुगतिक न्याय कहा। उन्होंने किसी भी शैली के अन्धानुकरण का विरोध करते हुए पाँच गुणों को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी माना।

वामन के मतानुसार विशिष्ट पद रचना रीति है। पदों की रचना में यह विशिष्टता गुणों के कारण आती है। गुण काव्य की शोभा करने वाले धर्म हैं।[13] *रीति काव्य की आत्मा है। यहाँ का विवेचन करने में आचार्य वामन को ही आधार बनाना अपेक्षित है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा कहा। इस दृष्टि से रीति सम्बन्धी विवेचन वामन प्रदर्शित मार्ग से ही किया जा रहा है। रीति को शब्द विन्यास का कला भी कहा जा सकता है। यह कला शब्दों के नाद व अर्थ का मूल्यांकन करती हैं, जिससे कवि के गृहीत कथानक को प्रभावपूर्ण एक सूत्रता में बाँधा जा सके। रीति के तीन रूप माने गये हैं–वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली।*

वैदर्भी में माधुर्य, ओज, प्रसादादि समस्त गुण रहते हैं तथा गौड़ी रीति के प्रधान गुण, ओज और कान्ति है। पांचाली मधुरता एवं सुकुमारता से मुक्त होती है। कविराज विश्वनाथ ने माधुर्य व्यंजक वर्गों से युक्त मनोहर रचना को वैदर्भी रीति में रचित कहा है, जिसमें समासों की बहुलता हो और ओज प्रकाशक वर्णों का प्रयोग हो उस आडम्बरपूर्ण रचना को गौड़ी रीति से युक्त कहते हैं। इन दोनों रीतियों से अवशिष्ट जो वर्ण है अर्थात् जो वर्ण न माधुर्य के व्यंजक हो तथा न ओज को ध्वनित करते हों उनसे जो रचना की जाए तथा जिसमें पाँच छः पदों तक समास हो उसे ***पांचाली रीति*** *माना जाता है।*[14]

महाकवि डॉ० हरिनारायण दीक्षित की काव्य शैली अत्यन्त जीवन्त और सरल है। नैसर्गिक सरसता तथा भावों की सुकोमलता से उनकी काव्य–भारती संवलित दीख पड़ती है। वे वैदर्भी के प्रौढ़ कलाकार हैं। वैदर्भी रीति में रचना करना कवि की सबसे बड़ी विशेषता

होती है। प्रत्येक कवि वैदर्भी शैली में पटु नहीं हो सकता।[15] वैदर्भी में रचित काव्य का संगीत विपंची के स्वर की भाँति श्रुतिमधुर और आस्वाद्य होता है। विल्हण ने वैदर्भी शैली को श्रवणामृतवर्ष्पाकर्त्री तथा बिन बादल बरसात कहा है। वह पदों के लिए उनकी सौभाग्य सम्पत्ति को प्राप्त कराने की प्रतिभू: है।[16] ऐसी वैदर्भी रस सिद्ध कवियों को ही सुलभ होती है।

महाकवि डॉ० हरिनारायण दीक्षित के काव्य में सर्वत्र वैदर्भी शैली के दर्शन होते हैं। गम्भीरतम भाव को सरलतम शैली में सुकुमार पदावली द्वारा चित्रित कर देना डॉ० हरिनारायण की अपनी विशेषता है। कवि की रसवन्ती वाणी ने सर्वत्र ही काव्य में गेयता उत्पन्न कर उसे प्राणवन्त बना दिया है। उनकी कविता अति सुकोमल सृजनशील कल्पना से समृद्ध है। उनकी यह काव्य भारती समास रहित तथा अल्प समासों से विभूषित है। वैदर्भी की यही विशेषता भी है। इसके साथ ही सहृदय अस्वाद्यता तथा पदलालित्य भी वैदर्भी की विशेषताएँ हैं।

***समासरहित** और **कोमल शब्दों** में निर्मित उनका निम्न श्लोक द्रष्टव्य है–*

गोवधनोऽयं यमुनानदीयं, वृन्दावनं चारु कदम्बवृक्षाः।

त्वया बिना कृष्ण! तुदन्ति चितं, न केवलं मेऽपितु सर्वनृणाम्।। 1/4

हासा विलासा ब्रजमण्डलस्य, त्ययैव सार्धं मथुरां प्रयाताः।

दुःखं च दैन्यं च घना प्रतीक्षा, पदं व्युधः कृष्ण। किमत्र कुर्याम्?।। 1/47

सन्दर्भ सूची

1. *शब्दार्थोसहितौकाव्यम्, काव्यालंकार, 1/6*
2. *शब्दार्थोकाव्यम् काव्यालंकार, 2/1*
3. *काव्यं ग्राह्यमलंकरात्, सौन्दर्यमलंकार, काव्यालंकार सूत्र, 1/1–2*

4. का0प्र0 8/93
5. राधा0 1/48
6. वही; 3/64
7. वही; 3/197
8. शब्दकल्पद्रुम, पंचमकाण्ड, पृ0, 137
9. प्रायेणचार्याणामियं शैली यत् स्वाभिप्रायमपि परोपदेशमिव वर्णयन्ति/मनुस्मृति, 1/4 पर कुल्लूकभट्ट टीका, पृष्ठ सं0 4
10. सरस्वती कण्ठाभरण, 2/26
11. काव्यादर्श 1/102
12. काव्यादर्श 1/42
13. काव्यालंकारसूत्र 1/2/7, 8, 3/1/1, 1/1/1, 2/6
14. सा0द0 9/2, 3, 4
15. तत्रासमा निःशेषश्लेषादिगुणगुम्फिता, विपंचीस्वर सौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते।। 2/29
16. अनुभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रम जन्मभूमिः।
वैदर्भीरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभ प्रतिभूःपदानाम्।। –विक्रमांकदेवचरितम्